जनसत्ता

दुरंगी चाल

भारतीय वायु सेना के पाकिस्तान की सीमा में चल रहे आतंकी शिविरों पर लक्षित हमले के बाद पाकिस्तानी हुकूमत ने जिस तरह जंग को किसी के भी हित में न बताते हुए अमन का पैगाम देने की कोशिश की थी और बातचीत का सिलसिला शुरू करने की बात कही थी, उससे लगा था कि वह अब दोनों देशों के रिश्तों में तनाव खत्म करने को लेकर गंभीर है। पर हकीकत यह है कि वह कहता कुछ तथा करता कुछ और है। इसका ताजा उदाहरण फिर से संघर्ष विराम का उल्लंघन करते हुए सीमारेखा पर रजौरी जिले के नौशेरा सेक्टर में पाकिस्तानी सेना की तरफ से की गई गोलीबारी है। इस गोलीबारी में सीमावर्ती इलाकों में रहने वाले चार भारतीय नागरिक मारे गए। सेना ने जवाबी हमला किया, जिसमें पाकिस्तान के भी चार नागरिक और दो रेंजर मारे गए। इसके पहले भी पुंछ की कृष्णा घाटी में पाकिस्तानी गोलीबारी से एक युवती और दो बच्चों की मौत हो गई थी। पिछले एक साल में पाकिस्तान सैकड़ों बार संघर्ष विराम का उल्लंघन कर चुका है। अगर वह सचमुच अमन चाहता, तो इस तरह संघर्ष विराम का उल्लंघन न करता।

वायुसेना के हमले के बाद जिस तरह दुनिया भर में पाकिस्तान की निंदा हुई, उससे भी शायद उसने कोई सबक नहीं सीखा है। वहां के प्रधानमंत्री इमरान खान ने वायुसेना हमले के बाद वीडियो संदेश देकर अमन की बात की थी, फिर अगले ही दिन उनके युद्धक विमान भारतीय सीमा में घुसे, जिसमें से एक को मार गिराया गया। तब फिर इमरान खान ने अपनी संसद में भारत को अमन की सीख दी और बातचीत की पेशकश करते हुए दुनिया के सामने अपना मानवीय चेहरा पेश करने का प्रयास किया। पर वह चेहरा उस वक्त बेनकाब हो गया जब भारत को इस्लामिक देशों के संगठन आइओसी के सम्मेलन में शामिल होने का न्योता मिलने पर पाकिस्तान ने उसका बहिष्कार कर दिया। अगर वह सचमुच भारत के साथ मसले सुलझाने को लेकर गंभीर होता, तो इतनी कटुता उसमें न होती। संघर्ष विराम को लेकर भी वह इतना लापरवाह शायद न होता। इमरान की अमन और तरक्की की बातों से एक बार को तो यही लगा था कि शायद सरकार, सेना और वहां की खुफिया एजंसी के बीच इस मसले को लेकर कोई सहमति बनी होगी। पर संघर्ष विराम उल्लंघन ने एक बार फिर यही साबित किया है कि पाकिस्तानी सेना का रुख बिल्कुल नहीं बदला है।

दरअसल, पाकिस्तान ऐसी दुरंगी चालें सदा से चलता रहा है। यह भी छिपी बात नहीं है कि वह संघर्ष विराम का उल्लंघन क्यों करता है। वह गोलीबारी करके भारतीय सैनिकों का ध्यान भटकाने का प्रयास करता है और फिर उसकी आड़ में चरमपंथियों को सीमा पार करने का प्रयास करता है। यह भी अकारण नहीं है कि जिस समय पाकिस्तानी सेना नियंत्रण रेखा पर गोलीबारी कर रही थी, उसी समय हंदवाड़ा में आतंकवादियों के साथ मुठभेड़ में पांच भारतीय जवान शहीद हो गए। सब जानते हैं कि पाकिस्तानी सेना चरमपंथियों को पोसती और फिर उन्हें भारत के खिलाफ इस्तेमाल करती है। इसलिए जब भी आतंकवाद पर रोक लगाने की बात होती है, पाकिस्तानी हुक्मरान पहले कश्मीर मसले के हल की बात उठा कर बात का रुख मोड़ देते हैं। पाकिस्तान के ऐसे दोहरे रवैये से भला कहां तक अमन और बातचीत के जरिए मसलों को हल करने की उम्मीद की जा सकती है।

सबूत और सवाल

आखिरकार पाकिस्तान को यह स्वीकार करना ही पड़ा कि जैश ए मोहम्मद का सरगना मसूद अजहर उसके यहां रह रहा है। पाकिस्तान के विदेश मंत्री महमूद कुरैशी ने सीएनएन से बातचीत के दौरान पहली बार सार्वजनिक रूप से यह कबूल किया है। वरना अब तक मसूद अजहर की मौजूदगी को लेकर पाकिस्तान झूठ बोलता रहा है। कुरैशी की यह स्वीकारोक्ति ही इस बात का प्रमाण है कि पाकिस्तान अपने यहां आतंकी संगठनों को पाले हुए है और इनका इस्तेमाल भारत के खिलाफ छद्म युद्ध में कर रहा है। हालांकि भारत तो लंबे समय से इसके ठोस और अकाट्य प्रमाण देता रहा है, लेकिन पाकिस्तान हमेशा इन्हें खारिज करता रहा। ऐसे में अब मसूद अजहर के ठिकाने को लेकर तो कोई संदेह नहीं रह गया है। हालांकि बचते-बचते कुरैशी ने यह भी बता डाला कि मसूद इन दिनों गुर्दे की गंभीर बीमारी से जूझ रहा है और वह घर से कहीं आ-जा नहीं सकता। कुरैशी इतना सब कुछ जानते हैं तो इससे स्पष्ट है कि मसूद अजहर की पल-पल की जानकारी उनके और उनकी सरकार के पास है।

मसूद अजहर लंबे समय से भारत के लिए वांछित है। मुंबई हमले से लेकर पठानकोट, उड़ी और नगरोटा में सैन्य और नागरिक ठिकानों पर आतंकी हमलों का साजिशकर्ता जैश का सरगना मसूद अजहर ही रहा है। हाल में पुलवामा में सीआरपीएफ के काफिले पर आतंकी हमले की जिम्मेदारी भी जैश ने ही ली। भारत पर जब-जब ये हमले हुए, जांच एजेंसियों ने पूरी जांच के बाद पुख्ता सबूत जुटाए और पाकिस्तान को सौंपे। लेकिन पाकिस्तान इन सबूतों को दूर, मसूद अजहर की अपने यहां मौजूदगी तक को मानने को तैयार नहीं था। लेकिन अब पुलवामा हमले के बाद पाकिस्तान जिस तरह से घिर गया है, उसी के दबाव में वह यह मानने को मजबूर हुआ कि मसूद उसके यहां है। इसलिए अब अगर पाकिस्तान वाकई शांति चाहता है तो उसे मसूद अजहर को भारत को सौंपने की दिशा में कदम बढ़ाना चाहिए। मसूद अजहर भारत में आतंकी हमले करवाने के मामले में वांछित है और उस पर भारतीय कानून के मुताबिक ही कार्रवाई होगी, यह भारत की मांग है।

हालांकि पाकिस्तानी विदेश मंत्री की बात से कोई बहुत उम्मीद नहीं लगती। कुरैशी ने भारत से ऐसे ठोस और अकाट्य सबूत देने को कहा है जो जिनसे पाकिस्तान की अदालत में टिक सकें। जबकि हाल में भी भारत ने जो डॉजियर पाकिस्तान को सौंपा है उसमें मसूद अजहर से संबंधित सारे ठोस प्रमाण हैं। पाकिस्तान की मंशा मामले को सबूतों के जाल में फंसाए रखने की है। अगर भारत द्वारा दिए गए सबूतों को पाकिस्तान की अदालत खारिज कर देती है, तो क्या इससे उस पर सवालिया निशान खड़े नहीं होते? सिर्फ भारत ही नहीं अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन तक मसूद अजहर को संयुक्त राष्ट्र की प्रतिबंधित आतंकी सूची में डालने के लिए प्रयासरत हैं। तब ऐसे में मसूद को आतंकी मानने के लिए पाकिस्तान को किस सबूत की जरूरत रह जाती है? जिसे दुनिया के ज्यादातर देश आतंकी करार दे चुके हैं, उसके बारे में पाकिस्तान का सबूत मांगना हास्यास्पद ही है। मसूद अजहर, हाफिज सईद जैसों को आतंकी मानने के लिए क्या अब किसी सबूत की जरूरत रह गई है! इमरान खान ने प्रधानमंत्री पद की शपथ लेने के पहले और बाद में साफ कहा था और आज भी कह रहे हैं पाकिस्तान शांति चाहता है और इसके लिए भारत एक कदम बढ़े तो वह दो कदम बढ़ने को तैयार है। तो अब मौका है जब इमरान खान पहल करें और जिन-जिन आतंकियों को भारत मांग रहा है, उन्हें भारत के हवाले करें।

कल्पमेधा

युद्ध मानव जाति का विनाशक है। इसलिए उससे बचने के सभी उपाय काम में लिए जाने चाहिए।
– महात्मा गांधी

आदिवासियों पर संकट

अमरेंद्र किशोर

आर्थिक वैश्वीकरण ने सारी दुनिया में ऊर्जा और कच्चे माल के लिए कभी न मिटने वाली भूख को तेज कर दिया है। ऐसे में सवाल यह है की क्या आदिवासियों के दावों को खारिज किए जाने के पीछे खनन कंपनियों के लिए अपने खनिज के साथ जंगलों को साफ करने की कोई सरकारी 'योजना' तो नहीं है? जब आदिवासी अपने मूल से उजड़ेंगे तो जाएंगे कहां?

वर्ष 1854 में अमेरिका के रेड इंडियन कबीले के सरदार ने वाशिंगटन के उस व्यापारी को पत्र लिखा था, जो आदिवासियों की जमीन खरीदना चाहता था। सरदार ने लिखा था- 'कोई आकाश या पृथ्वी की आभा कैसे खरीद या बेच सकता है? हवाओं की ताजगी या जल की चमक के जब हम मालिक नहीं हैं, तो तुम उन्हें कैसे खरीद सकते हो?' उसने आगे लिखा था, 'गोरे लोग जब मर कर सितारों के बीच चले जाते हैं तो वे अपने उस देश को भूल जाते हैं जहां वे पैदा होते हैं, लेकिन हमारे लोग तो मर कर भी इस जमीन को कभी नहीं भूल पाते क्योंकि वह उनकी मां होती है।'

क्या भारत के आदिवासियों का दर्द रेड इंडियन कबीलों की पीड़ा और हताशा से अलग है? हरगिज नहीं! आजादी हासिल करने की कीमत देश के आदिवासियों ने भी चुकाई है, यह एक सच्चाई है। यह बात दूसरी है कि उनके बलिदान की गाथा गाने वाला न कोई लोकगायक रहा और न उन वीर आदिवासियों के साहसिक और पराक्रमी उपाख्यानों को किसी ने तरीके से बांचने की जरुरत समझी गई। ग्रंथों की गवाही है कि अनेकानेक कालखंडों में फलती-फूलती सभ्यताओं की करारी मार उनके ऊपर पड़ती रही है। अलबत्ता, उन जुल्मों को सहने की ताकत कुदरत ने उन्हें जरूर दी है और उन पर हुए 'अन्याय' का अफसोस देश की संसद को भी है।

लेकिन पिछले दिनों सर्वोच्च न्यायालय के एक ऐतिहासिक आदेश में खुद को जंगल का निवासी सिद्ध करने में विफल रहे 'अवैध कब्जेदारों' को जंगलों से बेदखल करने का निर्देश दिया था। सुप्रीम कोर्ट में राज्यों द्वारा दायर हलफनामों के अनुसार, वन अधिकार अधिनियम के तहत अनुसूचित जनजातियों और अन्य पारंपरिक वनवासियों द्वारा किए गए लगभग ग्यारह लाख बहत्तर हजार नौ सौ इकत्तीस भूमि स्वामित्व के दावों को विभिन्न आधारों पर खारिज कर दिया गया। इनमें वे लोग शामिल हैं जो ये सबूत नहीं दे पाए कि कम से कम तीन पीढ़ियों से भूमि उनके कब्जे में थी। अदालत का यह आदेश एक ऐसी याचिका पर आया था जिसमें वन अधिकार अधिनियम की वैधता पर सवाल उठाया गया था। याचिकाकर्ता ने पारंपरिक वनभूमि पर दावे खारिज करने की मांग की थी। आश्चर्य की बात है कि सरकार ने बचाव के लिए अपने वकील ही नहीं भेजे और मामले की सुनवाई कर रहे पीठ ने 17 जुलाई तक उन सभी आदिवासियों की बेदखली का आदेश दे दिया जिनके दावे खारिज हो गए हैं। इस आदेश से देशभर में तकरीबन दस लाख लोगों को जंगल खाली करने की नौबत आ गई। ये लाखों लोग वे हैं जो सदियों से जंगलों, पहाड़ों, तराई और वहां के मैदानी इलाकों में रहते चले आ रहे हैं। इन्हीं लोगों को आजादी मिलने के बाद भारत सरकार ने अनुसूचित जनजाति का दर्जा दिया था।

मगर पूरे मामले का मानवीय पहलू इतना संजीदा है कि सुप्रीम कोर्ट को आदिवासियों और वनवासियों को बड़ी राहत देनी पड़ी। इन आदिवासियों का अपना पक्ष है और जंगलों में उनकी उपस्थिति के अपने तर्क हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए फिलहाल उन्हें बेदखल नहीं करने का आदेश कोर्ट ने दिया है। मगर सुप्रीम कोर्ट ने यह जरूर जानना चाहा कि अभी तक सरकारें सोई क्यों रही? वाजिब-सी बात है कि आदिवासियों के पक्ष को सुनने में कोर्ट की अभिरुचि

जरूर है, क्योंकि राज्य और जिला स्तर पर सरकार और प्रशासन के कार्य-प्रणाली पर सवाल उठना लाजिमी है। शुरू से ही जनसंगठनों और समाज विज्ञानियों ने अधिनियम के मानकों और कसौटियों पर सवाल उठाए हैं। आज भी सरकार न आदिवासी शब्द को स्पष्ट कर सकी है यानी किसे कहेंगे आदिवासी।

वस्तुस्थिति यह है कि देश का संविधान अनुसूचित जनजातियों को परिभाषित नहीं करता है, इसलिए अनुच्छेद 366(25) अनुसूचित जनजातियों का संदर्भ उन समुदायों के रूप में करता है जिन्हें संविधान के अनुच्छेद 342 के अनुसार अनुसूचित किया गया है। तब उन लोगों के आदिम लक्षणों, भौगोलिक अलगाव, विशिष्ट संस्कृति, बाहरी समुदाय के साथ संपर्क में संकोच और आर्थिक पिछड़ेपन को आधार मान कर देश की कल्याणकारी व्यवस्था में सुविधाओं से सीधे जोड़ा गया। इन्हें देश का मूल बाशिंदा कहते हुए सरकार और संसद ने भी माना कि 'जंगलों पर पहला अधिकार आदिवासियों' का है और इसी वजह से वनाधिकार अधिनियम 2006 अस्तित्व में आया था। यह कानून 31 दिसंबर 2005 से पहले कम से कम तीन पीढ़ियों तक वन भूमि पर रहने वालों को भूमि अधिकार देने का प्रावधान करता है। प्रावधान के मुताबिक दावों की जांच जिला कलक्टर की अध्यक्षता वाली समिति और वन विभाग के अधिकारियों के सदस्यों द्वारा की जाती है। इस अधिनियम के तहत मूल बाशिंदों को जंगलों से वनोपज जुटाने और उन्हें बेचने के साथ ही कुछ अन्य खास सुविधाएं दी गईं जिससे जन और वन के बीच के संबंधों की न सिर्फ व्याख्या हुई बल्कि उसे फिर से जिंदा किया गया। शीर्ष अदालत ने राज्य सरकारों को अब चार महीने की मोहलत दी है ताकि सरकारें यह बता सकें कि भारी संख्या में दावों के खारिज किए जाने की वजह क्या रही है। खारिज होते दावों को देख कर आदिवासी निराश हो गए, क्योंकि उनमें से कइयों के पास अपनी जमीन का खतियान नहीं था और न ही वह अपने को सिद्ध कर पाए कि वे सदियों से अपने गांव में रहते चले आ रहे हैं। सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले को भी गंभीरता से लिया है।

देश भर से वन समुदायों से शिकायत यही आई है कि सबूतों के अभाव और प्रक्रियाओं की जानकारी के अभाव के कारण और वन विभाग द्वारा सबूत नहीं दिए जाने के कारण आदिवासी अपनी पैरवी ठीक ढंग से नहीं कर पाए और आखिरकार उनके दावे निरस्त हो गए। दुखद पहलू यह है कि जब उच्चतम न्यायालय में इस प्रकरण की सुनवाई हो रही थी उस समय केंद्र सरकार को आदिवासी और वनवासी समाज का पक्ष मजबूती के साथ रखना था। लेकिन आदिवासी और वनवासी हितों के अधिकारों के लिए सरकार उदासीन रही, जिसका परिणाम भी अब सामने है।

वनाधिकार अधिनियम लागू होने के बाद लघु वनोपजों पर पहला और आखिरी अधिकार वहां के मूल बाशिंदों- आदिवासियों या वनों पर आश्रित समाज का हो गया जिससे वन विभागों को घोर ऐतराज था। इसलिए इस कानून के लागू होने के बारह साल बाद भी जमीन पर मालिकाना हक को लेकर दुविधा और भ्रम की स्थिति बनी हुई है। तथ्य यह है कि अधिकारों की प्रक्रिया खराब कर दी गई है। अभी तक देश भर में इकतालीस लाख दावे दर्ज हुए जिनमें मात्र अठारह लाख दावों की मंजूरी दी गई है। मध्यप्रदेश और ओड़िशा में सबसे ज्यादा दावे खारिज किए गए। कई राज्यों में ग्राम सभा कारगर नहीं है, जो दावे की वास्तविकता का आकलन करने के लिए सबसे विश्वसनीय इकाई है। शीर्ष अदालत की यह टिप्पणी कि 'यह कानूनी समस्या से कहीं ज्यादा मानवीय समस्या है', राज्यों के वन विभाग के नाकारेपन की ओर स्पष्ट इशारा है।

आर्थिक वैश्वीकरण ने सारी दुनिया में ऊर्जा और कच्चे माल के लिए कभी न मिटने वाली भूख को तेज कर दिया है। ऐसे में सवाल यह है की क्या आदिवासियों के दावों को खारिज किए जाने के पीछे खनन कंपनियों के लिए अपने खनिज के साथ जंगलों को साफ करने की कोई सरकारी 'योजना' तो नहीं है? जब आदिवासी अपने मूल से उजड़ेंगे तो जाएंगे कहां?

भावों की भाषा

राकेश बाजिया

कहा जाता है कि भाषा मनुष्य को संपूर्ण चराचर जगत से अलग करती है। यह भाषा ही है जिसके चलते मनुष्य अपनी अलग संस्कृति विकसित कर पाया। भाषा के आधार पर ही मनुष्य को जानवरों से श्रेष्ठ समझे जाने की मान्यता रही है। ऐसे में जब भी अकेले बैठ कर पशु-पक्षियों को देखता हूं तो भीतर कहीं एक साथ सैकड़ों प्रश्नों से मुखातिब होना पड़ता है। आमतौर पर ऐसे अनुभव जीवन में सहज ही होते रहते हैं, जहां भाषा मनुष्य और जानवर के बीच का फर्क बताती है। गांवों में कई बार खेती को नुकसान पहुंचाने वाले आवारा पशुओं को बांध कर भूखा रखा जाता है। ऐसे में वे निरीह पशु किस तरह अपने मौन में छिपी पीड़ा को प्रदर्शन करते होंगे? या फिर पालतू पशुओं को चारा डालने में हुई देरी पर उनकी किस तरह की प्रतिक्रिया होती होगी? इसी तरह देखें तो मनुष्यों में कोई छोटा बच्चा भूख लगने पर किस तरह रोकर अपनी जरूरत की भाषा गढ़ता है?

दरअसल, जानवरों के बारे में अक्सर पढ़े-लिखे लोगों को यह कहते सुनता हूं कि जानवरों के पास कोई भाषा नहीं होती तो सोचता हूं कि हर कोई अपने घर तक आए जानवरों को दुत्कार देता है और पंछियों को उड़ा देता है, बिना यह सोचे कि ये सभी जगहें जिन्हें हम सभ्य कहे जाने वाले इंसानों ने कंक्रीट के जंगलों में तब्दील कर दिया है। हो सकता है कि कभी यहां इन पशु-पक्षियों के पुरखों के आसरे रहे होंगे, वरना ये सब हमारे पास क्या लेने आते!

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में शहरीकरण ने साहित्य में भी पशु-पक्षियों की जगह कृत्रिम उत्पादों को भरने के भरसक प्रयास किए हैं। किसी समय किस्से या कहानियों में इंसानों के साथ बाकी जीवों का आना-जाना भी सहज मगर विशिष्टता लिए होता था। अन्यथा प्रेमचंद के 'झबरे' और महादेवी के गिल्लू को कौन-सी भाषा आती थी? एक बार घर लौटते समय पिताजी के साथ आए एक नन्हें शावक की बरबस ही याद आ जाती है। उसने दूसरे आवारा जानवरों के आक्रामक रवैये से बचने के लिए पिताजी का आसरा लिया और इनके साथ घर तक आ गया। रास्ते में जब उसने अपनी भूख का इजहार किया होगा तो इन्होंने किसी ढाबे से लेकर उसे दूध पिला दिया था। पता नहीं, किन वजहों से उसे 'जर्मन' कह कर पुकारा जाने लगा। इसके बाद किसी की जुबान से अपना नाम 'जर्मन' सुन कर वह दौड़ा चला आता था। गांव भर के बच्चों के साथ 'बच्चों' की तरह खेलता और अभिभावक-सा खयाल रखता। कभी खेत में काम करने जाती हुई किसी स्त्री के साथ चला जाता तो कभी उधर से गुजरते किसी पुरुष के साथ लौट आता।

दुनिया मेरे आगे

सोचता हूं कि जब वह पूरे गांव का चहेता बन गया, फिर भी उस पहले दिन की बात को उसने अपने जेहन में जैसे छिपा कर रखा होगा! यह हम कई बार देखते थे कि जब पिताजी के देर से आने पर भी वह उसी तरह उनके समक्ष प्रेम का प्रदर्शन करता था। दुत्कारने पर भी कभी उनके पांवों में लोटता, कभी सीधा खड़े होने की कोशिशें करता, तरह-तरह की आवाजें निकालता और अपने होने से कहीं ज्यादा वह उन्हें रिझाने का एक अवसर न छोड़ता। उसके रहते मां अपनी गाय, भैंस और बकरियों की रखवाली के लिए निश्चिंत रहती। कई बार हम लोग जब पढ़ने वापस शहर आते तो स्टेशन तक हमारे पीछे-पीछे चला आता, जैसे छोड़ने आया हो और उसे वापस जाने के लिए दुत्कारने पर भी एक न सुनता। सोचता हूं कि हर दुत्कार के पीछे छिपा प्रेम उसे कैसे समझ आ जाता था!

अपने जेहन में उठे अनगिनत प्रश्नों की कड़ी में आखिर प्रश्न यही होता की जब पशु-पक्षियों की कोई भाषा नहीं होती तो वे इतनी सहजता से कैसे अपने मनोभावों का प्रदर्शन कर जाते होंगे। लेकिन अगर घंटों तक पशु-पक्षियों के साथ वक्त बिताया जाए तो हम यह आसानी से समझ सकते हैं कि सभ्य समाज में जानवर कहलाने वाले जीव अक्सर प्रेम की भाषा को इस कदर समझते हैं कि अपने प्रति प्रदर्शित प्रेम की पाई-पाई चुकाने को हर क्षण तत्पर रहते हैं।

हम देखते हैं कि यों तो कोई पंछी जरा-सी आहट होने पर उड़ जाता है, लेकिन अगर कभी किसी पक्षी को एकटक आंखों में आंखें डाल कर देखा जाए तो वह कुछ पलों के लिए उड़ना भूल कर अपने नए साथी के भावों की भाषा पढ़ने की कोशिश जरूर करता है। पिछले दिनों 'जर्मन' के गुजर जाने की खबर सुनी तो एक बार दिल बैठ गया। मगर जब पूरा किस्सा सुना कि किस तरह पास के शहर से आए हुए पशु चिकित्सकों ने बूढ़े होकर आंखों कि रोशनी चली जाने से मरणासन्न अवस्था में पहुंच चुके 'जर्मन' के लिए गांव के छोटे बच्चे से लेकर बड़ों तक को चिंतित पाया, तो महसूस हुआ की 'जर्मन' के प्रेम की भाषा भी पूरा गांव समझता था।

भारत का हासिल

इस्लामिक सहयोग संगठन (ओआइसी) ने अपने गठन के पचास साल बाद पहली बार भारत की विदेश मंत्री को अतिथि के रूप में न्योता दिया। यह भारत के लिए बड़ी कूटनीतिक उपलब्धि है। अबु धाबी में हुए ओआइसी के विदेश मंत्री स्तर के सम्मेलन में भारतकी विदेश मंत्री ने अपनी बात रखी। इससे पहले 1969 में जब मोरक्को में इस संगठन की पहली बैठक हुई थी तो भारत को भी बुलाया गया था। लेकिन तब भी भारतीय प्रतिनिधिमंडल को पाकिस्तानी सैन्य शासक जनरल याह्या खान के विरोध के चलते लौटा दिया गया था। आज उसी भूमिका में पाकिस्तानी विदेश मंत्री शाह महमूद कुरैशी दिखाई दे रहे हैं। ओआइसी में भारत को भी बुलाने की खबर से वे इतने बौखला गए कि उन्होंने बैठक का बहिष्कार ही कर दिया। इंडोनेशिया एवं पाकिस्तान के बाद भारत में ही सबसे अधिक मुसलमान रहते हैं। इसलिए हमें तो महज अतिथि नहीं, बल्कि स्थायी सदस्य के तौर पर वहां होना चाहिए ताकि पाकिस्तान द्वारा लगातार हमारे ऊपर जो मनगढ़ंत आरोप लगाए जाते हैं, उनका हम मुहतोड़ जवाब दे सकें। इस संगठन में सत्तावन देश हैं यानी दुनिया के एक चौथाई से भी अधिक देश। इस नाते इनके ऊपर इस्लामिक चरमपंथियों के खात्मे की दिशा में भी ठोस कदम उठाने का भी दायित्व आता है।

● *जंग बहादुर सिंह, जमशेदपुर*

पाक को सबक

भारत ने जिस तरह से पाकिस्तान को अलग-थलग कर दिया है, वह अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण कूटनीति का हिस्सा है। यह भारत की सख्ती का ही नतीजा है कि पाकिस्तान के प्रधानमंत्री इमरान खान लगातार भारत से शांति की अपील कर रहे हैं। पाकिस्तानी वायु सेना द्वारा भारतीय सीमा का उल्लंघन करने पर भारतीय हवाई सेना ने उसे तुरंत जवाब दिया। जवाबी कार्रवाई में सेना ने उनके एक विमान को मार कर नीचे गिरा दिया। पाकिस्तानी वायु सेना का उद्देश्य भारतीय सेना को नुकसान पहुंचाने का था। भारतीय सीमा में दाखिल होने से पहले भारतीय वायुसेना ने उसे खदेड़ दिया। वास्तव में यह सेना की तत्परता ही थी जो बड़े नुकसान होते-होते बच गया। हालांकि इस कार्रवाई में हमारा भी एक विमान मिग-21 नष्ट गया। भारत सरकार ने अपने बहादुर पायलट को बचाने के लिए पाकिस्तान के साथ जो सख्ती और कूटनीति अपनाई, उसी से विंग कमांडर अभिनंदन की वापसी संभव हुई। पाकिस्तान का सदाबहार मित्र चीन भी अब उसका साथ छोड़ चुका है। चीन ने उसे कड़ी चेतावनी दी है। आतंकवाद के मुद्दे पर विभिन्न देशों जैसे अमेरिका, फ्रांस और ऑस्ट्रेलिया ने पाकिस्तान की निंदा की है। भारत द्वारा की गई कार्रवाई में विश्व के सभी मुल्कों ने भारत का समर्थन भी किया है। वास्तव में आतंकवाद पूरी मानव जाति के लिए खतरा है। इसे पूर्ण रूप से खत्म करने में ही भलाई है।

● *दुर्गेश शर्मा, गोरखपुर*

मीडिया की जिम्मेदारी

लोकतंत्र का एक स्तंभ मीडिया भी है। लेकिन इसकी गैर जिम्मेदाराना भूमिका चिंता का विषय बन गई है। आतंकवाद को लेकर हिंदुस्तान और पाकिस्तान के बीच तनाव बना हुआ है और देश युद्ध के मुहाने पर खड़ा है। ऐसे में मीडिया की जिम्मेदारी बनती है कि वह संयम बरते और तथ्यपरक रिपोर्टिंग करे। यह हकीकत है कि देश में और सीमाओं पर जिस तरह से हमारे जवान शहीद हो रहे हैं उससे नागरिकों में गुस्सा और सहानुभूति उमड़ना लाजिमी है। ऐसे में मीडिया को जिम्मेदारी समझनी चाहिए। न्यूज रूम में बैठे एंकर इतने उत्तेजित और क्रोधित दिखते हैं कि वह ये भी भूल जाते हैं कि उनको क्या कहना चाहिए और क्या नहीं। खबर ब्रेक की होड़ में वे यह भी भूल जाते हैं कि कौन सी खबर राष्ट्र हित में है या नहीं। इसी का एक उदाहरण देखने को मिला कि हमारे एक जाबांज विंग कमांडर अभिनंदन को लेकर मीडिया ने टीआरपी बढ़ाने के चक्कर में उनकी पूरी जन्मकुंडली बता डालने से परहेज नहीं किया। अभिनंदन को लेकर मीडिया ने सारी सूचनाएं सार्वजनिक कर दीं। ऐसे में पाकिस्तान सौदे बाजी भी कर सकता था। नासमझी तो तब और भी बढ़ गई जब इमरान खान ने हमारे कमांडर को रिहा करने की बात की। तभी से मीडिया ने इमरान और उनकी सरकार को डरपोक कहना शुरू कर दी। मीडिया में बैठे लोगों को अपनी जिम्मेदारी को समझना होगा और पत्रकारिता की गरिमा को बचाना होगा।

● *मोहम्मद आसिफ, दिल्ली*

मानवीय पहल की मिसाल

जान जोखिम में डाल कर सीवरों में उतर कर सफाई करने वाले सफाई कर्मचारियों को दिल्ली की केजरीवाल सरकार ने बड़ी राहत दी है। दिल्ली सरकार ने विदेशों से ऐसी पचास मशीनों को खरीदा है। सरकार का यह अतिप्रसंशनीय काम और बड़ा कदम है। अब सफाई कर्मचारियों को सीवरों में नहीं उतरना पड़ेगा। पिछले कुछ महीनों में बड़ी संख्या में सफाई कर्मचारी सीवरों में दम घुटने से मारे गए। इस मानवीय और जरूरी कदम के लिए दिल्ली सरकार की जितनी प्रशंसा की जाए,कम है। इस काम से सभी सरकारों के कर्णधारों को प्रेरणा लेनी चाहिए जो अपनी सुखसुविधा और विलासिता के हर संसाधन को चुटकियों में हासिल करने को उद्यत रहते हैं, लेकिन सीवर सफाई के दौरान विषाक्त गैसों से दम घुटने से मरने वाले उन गरीबों के अनाथ बीबी बच्चों के लिए एकदम असहिष्णु बने रहते हैं! दिल्ली सरकार के इस अनुकरणीय पहल का देश के हर शहरों के नगर निगमों को अपने शहर में भी अनुसरण कर ऐसी मशीनों से ही सीवरों की सफाई कराने के प्रयास करने चाहिए, ताकि इन गरीब और कथित अंत्यज लोगों का व उनके परिवार का जीवन सुरक्षित रहे।

● *निर्मल कुमार शर्मा, गाजियाबाद*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

नई दिल्ली